दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2500 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 29 अंक नं० 10

अध्यात्म-पद

मैं निज आतम कब ध्याऊँगा ।टेक॥

रागादिक परिनाम त्यागकै, समतासौं लौ लाऊँगा ।मैं निज० १॥

मन वच काय जोग थिर करकै, ज्ञानसमाधि लगाऊंगा।

कब हौं क्षपकश्रेणि चढ़ि ध्याऊं, चारितमोह नशाऊंगा ।मैं निज० २॥

चारों करम घातिया खन करि, परमातम पद पाऊंगा।

ज्ञान दरश सुख बल भंडारा, चार अघाति बहाऊंगा ।मैं निज० ३॥

परम निरंजन सिद्ध शुद्धपद परमानंद कहाऊंगा।

'द्यानत' यह सम्पति जब पाऊं, बहुरि न जग में आऊंगा ।मैं निज० ४॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

फरवरी : 1974] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (346) एक अंक 35 पैसा [माघ : 2500

पधारो महावीर भगवान!

भगवान महावीर का 2500 वाँ निर्वाण-महोत्सव सारे देश में मनाया जायेगा, जिसकी तैयारियाँ जगह-जगह चल रही हैं। सोनगढ़ में नवनिर्मित विशाल महावीर-कुन्दकुन्द परमागममंदिर में भगवान की पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा का महोत्सव आगामी फाल्गुन शुक्ला 5, बुधवार से फाल्गुन शुक्ला 13, बुधवार तक मनाया जायेगा।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

फरवरी : 1974 ☆ माघ : वीर नि० सं० 2500, वर्ष 29 वाँ ☆ अंक : 10

ज्ञान और राग भिन्न है

ज्ञान और राग भिन्न हैं;—ऐसी भिन्नता कहो या अकर्तापना कहो; क्योंकि भिन्नता में कर्तापन नहीं होता। अपने से भिन्न हो, उसे आत्मा जानता अवश्य है परंतु करता नहीं है। जिसप्रकार केवलज्ञान में विकल्प नहीं है, उसीप्रकार साधक के श्रुतज्ञान में भी विकल्प नहीं है; ज्ञान से विकल्प भिन्न है, इसलिये ज्ञान में वह नहीं है। केवलज्ञान की भूमिका में तो विकल्प है ही नहीं, जबकि श्रुतज्ञान की भूमिका में देव-गुरु की भक्ति आदि विकल्प हैं, परंतु ज्ञानी उन्हें नहीं करता, उन्हें ज्ञान से भिन्न जानता है। इसलिये ज्ञानी को तो विकल्प ज्ञान के ज्ञेयरूप हैं परंतु ज्ञान के कार्यरूप नहीं हैं। ज्ञानरूप परिणमित जीव, रागादि कषायों को स्पर्श भी नहीं करता—स्पर्श किया तब कहा जाता है, जब उनके साथ एकता करे। जिसप्रकार आँख अग्नि को स्पर्श नहीं करता, (स्पर्श करे तो जल जाये) उसीप्रकार ज्ञानचक्षु शुभाशुभकषायरूप अग्नि को स्पर्श नहीं करता; यदि स्पर्श करे अर्थात् एकत्व करे तो वह अज्ञान हो जाये; इसलिये ज्ञान परभावों को स्पर्श नहीं करता; उन्हें करता नहीं है, वेदता नहीं है, उनमें तन्मय नहीं होता। ऐसे ज्ञानरूप आत्मा ही सच्चा आत्मा है।

जिन-मार्ग में देव-गुरु-धर्म का अद्भुत वर्णन

[जिनमार्ग में सर्वज्ञदेव ही रत्नत्रय के दाता हैं]

सर्वज्ञ के मार्ग की अचिंत्य महिमा; उसके सेवन से भव के अंत का नियम; भव के अभाव की भनक न आये तो तूने भगवान को माना ही नहीं।

(बोधप्राभृत : पौष कृष्णा अष्टमी, श्री कुन्दकुन्दस्वामी आचार्यपद-प्रतिष्ठा दिन)

मोक्ष को साधनेवाला ज्ञान कैसा होता है ? यह आचार्यदेव समझाते हैं। 'देव' कैसे होते हैं ? तो कहते हैं कि जो मोक्षसुख को दे, वह देव है; जिनके सेवन में मोक्षसुख प्राप्त हो, ऐसे अरिहंत परमात्मा, वे देव हैं, तथा उनके बतलाये मार्ग की साधना करते हुए बीच में साधक को ऐसा पुण्य-भाव हो जाता है कि जिसके फल में लोकोत्तर धर्म-अर्थ-काम (स्वर्गादिवैभव) भी सहज प्राप्त होते हैं। यद्यपि धर्मी को उनकी इच्छा नहीं, किंतु जिनमार्ग की—अरिहंतदेव की सेवा के राग से चक्रवर्ती आदि के समान उत्तम धर्म-अर्थ-काम की प्राप्ति होती है, अत: निमित्त की अपेक्षा अरिहंतदेव धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष को देनेवाले हैं, ऐसा कहा जाता है। चक्रवर्ती, तीर्थंकर, इन्द्रपद वगैरे उत्तम पद अरिहंत के मार्ग में ही होते हैं, इन पदों के धारक जीव अरिहंत-मार्ग के ही उपासक होते हैं। कुमत के सेवन में ऐसा ऊँचा पुण्य नहीं होता।

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को देवे, सो देव ऐसा कहा है, किंतु जिसके पास जो हो, उसे दे सकता है। भगवान के पास तो मोक्ष है। अत: वे मुख्यरूप से मोक्ष के ही दाता हैं, बीच में पुण्य का फल मिले, उसकी कुछ धर्मी को इच्छा नहीं, तथापि वो होता है। अत: उसका ज्ञान कराया है। वास्तव में तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-वीतरागभाव और मोक्ष इनकी प्राप्ति में भगवान निमित्त है, क्योंकि भगवान के पास तो उनका भंडार है और उसकी उपासना का उपदेश उन्होंने दिया। मोक्षसुख का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, जैनेश्वरी दीक्षा, वह भगवान अरिहंत के मार्ग में ही है, इसलिये वे ही उसके देनेवाले देव हैं।

जिनमार्ग में देव-गुरु-धर्म कैसे होते हैं ? वह कहते हैं—

विशुद्ध दयारूप धर्म है, सर्वसंग परित्यागरूप प्रव्रज्या है, उसके धारक ही जिनमार्ग में गुरु हैं; और जिसका मोह सर्व पर छूट गया है, ऐसे सर्व ही देव हैं। ऐसे देव-गुरु-धर्म का सेवन भव्य जीवों को कल्याणकारी है। अहो! ऐसे मार्ग प्रसिद्ध करके जिन आचार्य भगवान ने मोक्षमार्ग के सभी विघ्न दूर कर दिये हैं—ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य भगवान को आचार्य पदवी का आज महान दिवस है। अहो! 'देव तो वीतरागता को देनेवाले हैं, इसी का उन्होंने उपदेश दिया, और जिनमार्ग में गुरु भी क्षण-क्षण में वीतरागता की ही भावना करनेवाले हैं। अहो! भव्य जीवो, ऐसे मार्ग का सेवन करो, ऐसे मार्ग का सेवन करनेवाले भव्य जीवों को मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

भगवान के मार्ग में तो सर्वसंगपरित्यागरूप प्रव्रज्या कही है। वस्त्रादि परिग्रह सहित प्रव्रज्या (मुनिदशा) जिनमार्ग में नहीं होती; वस्त्रसहित तो श्रावकदशा होती है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी पवित्र जल से परिपूर्ण वह जैनधर्मरूपी उत्तम-पवित्र सुतीर्थ, उसमें हे भव्य जीवो! तुम स्नान करो। अहो, जैन-मार्ग में हमारे सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण ज्ञान-वीतरागता सहित हैं, इसलिये उनके मार्ग के सेवन से ही वीतरागता और सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है; अतः हमारे देव ही हमें रत्नत्रय देनेवाले हैं, जगत के दूसरे कुदेवों के पास रत्नत्रय है ही कहाँ—कि दूसरों को देंगे? निमित्त के रूप में भी शुद्ध रत्नत्रयवाले ही देव होते हैं। इसप्रकार 'देव' को स्वीकार करे, उसे रत्नत्रय की प्राप्ति होती ही है। आचार्यदेव ने भी कहा है कि भगवान के कथनानुसार आत्मस्वभाव को सुनकर तू स्वानुभव से उसे प्रमाण करना, अर्थात् देव-गुरु के निकट आकर स्वानुभव करें, ऐसे जीव ही सच्चे श्रोता हैं। सर्वज्ञदेव को जिसने ज्ञान में स्वीकार किया, वह जीव स्वयं भी उनका उपदेश झेलकर, मोह को नष्ट करके स्वानुभव से 'देव' के समान हो जायेगा। सर्वज्ञ का स्वीकार करे और वह जीव स्वयं सर्वज्ञ न हो—ऐसा नहीं बन सकता। चाहे जैसे कठिन काल में भी जिस धर्मात्मा जीव ने सर्वज्ञ को अपने हृदय में स्थापित किया, वह जीव मार्ग से च्युत नहीं होता, उसे अब दीर्घ संसार नहीं होता। भवरहित ऐसे भगवान सर्वज्ञ को जिसने स्वीकार किया, वह अब अल्प काल में भव से रहित हो ही जावेगा। राग से पार जो सर्वज्ञ का स्वीकार है, वही रागरहित होने का पुरुषार्थ है; रागरहित सर्वज्ञ का स्वीकार किया, वह अब राग में नहीं अटकेगा, एक समय में पूर्णानंदस्वरूप परमात्मा

को स्वीकार किया, उसमें आनंद का वेदन हुए बिना नहीं रहेगा। जगमगाता केवलज्ञान सूर्य जिसने ज्ञान में स्वीकार किया; उसके ज्ञान में अंधकार नहीं रह सकता।

अहा! हम तो सर्वज्ञ परमात्मा का सेवन करनेवाले... हमारे आत्मा में अब दीनता नहीं रह सकती।—जैसे बड़े चक्रवर्ती की सेवा करनेवाला निर्धन नहीं रह सकता।—पूर्ण ज्ञानानंदरूप परिणत सर्वज्ञ परमात्मा ही पूर्ण ज्ञानानंद का उपदेश देनेवाले हैं, तथा उनको पहिचानकर उनके मार्ग पर चलनेवाले जीव भी वैसे ही पूर्ण ज्ञानानंद को प्राप्त होते हैं। अहो! प्रभो, हम आपकी सेवा करनेवाले, और हम अब अज्ञानी या अल्पज्ञ रहें, ऐसा नहीं बन सकता। 'तू सिद्ध, मैं भी सिद्ध' ऐसी श्रद्धावाला साधक अल्पकाल में सिद्ध हो जावेगा। ऐसा आत्मा जिसने अनुभव में लिया, उसने ही वास्तव में सर्वज्ञ-केवली प्रभु का सेवन किया। इसप्रकार देव की सेवा करनेवाले जीव को निमित्तस्वरूप वे देव शुद्ध रत्नत्रय को देनेवाले हैं।

जिसके पास जो हो उसकी सेवा से वह प्राप्त होता है।
आम्रतरु की सेवा करने से आम्रफल प्राप्त होता है,
नीम के पेड़ की सेवा करने से आम्रफल नहीं मिलता।

उसीप्रकार सर्वज्ञ-वीतरागपद जिसने प्रगट किया है, ऐसे देव के मार्ग का सेवन करने से शुद्ध रत्नत्रय प्राप्त होता है।

लेकिन रागी-द्वेषी-मोही जीवों के पास रत्नत्रय नहीं है, अतः उनकी सेवा करने से सम्यक्त्वादि रत्नत्रय प्राप्त नहीं होते।

इसप्रकार वीतरागदेव ही रत्नत्रय के दाता हैं, ऐसा समझना। ऐसा जानकर हे भव्य जीवो! तुम कुदेव का सेवन छोड़कर भगवान सर्वज्ञदेव के वीतराग मार्ग का बहुमानपूर्वक सेवन करो। इसके सेवन से रत्नत्रय की प्राप्ति व भव का अंत आयेगा।

सर्वज्ञ के मार्ग में जो शुद्ध रत्नत्रय है, वही महा पवित्र तीर्थ है। उस तीर्थ का सेवन करके वीतराग होकर भवसागर को पार किया जाता है और सम्मेदशिखर, गिरनार, शत्रुंजय आदि तीर्थ उनकी स्मृति में निमित्त हैं। भावतीर्थ तो रत्नत्रय है, और गिरनार आदि क्षेत्र तीर्थ हैं।

'ज्ञानतीर्थ' अथवा उत्तम क्षमादि शांतभावरूप परिणमित आत्मा, वह परमार्थ तीर्थ है, वह आत्मा स्वयं शुद्धभाव से संसार को पार कर रहा है, ऐसे तीर्थस्वरूप जीव जहाँ विचरते थे,

उस भूमि को भी उपचार से तीर्थ कहते हैं। अंतर के भावतीर्थ की स्मृति के लिये उस तीर्थ की यात्रा का भाव धर्मी को भी आता है।

अहो! जैनधर्म के सेवन से सर्व जीवों का उदय होता है। इसलिये जिनेन्द्र भगवान के शासन को 'सर्वोदय तीर्थ' कहते हैं। श्रीसमंतभद्रस्वामी ने भगवान के शासन को 'सर्वोदय तीर्थ' कहकर स्तुति की है। रत्नत्रय के धारक मुनिराज तो चलते-फिरते सजीव तीर्थ हैं। आचार्यदेव कहते हैं कि अहो भव्य जीवो! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी पवित्र जल से परिपूर्ण यह रत्नत्रय तीर्थ (त्रिवेणी संगम के समान रत्नत्रय का जिसमें संगम है) उसमें स्नान करो।

मोक्षमार्ग का 'ज्ञान' कैसा है?

भरतक्षेत्र के जीवों पर श्री कुन्दकुन्दस्वामी का परम उपकार

जो ज्ञान राग से, और इंद्रियों से पार होकर अतीन्द्रिय आनंदमय आत्मा को प्रत्यक्ष जाने, वह अतीन्द्रिय ज्ञान ही जिनमार्ग की वास्तविक मुद्रा है—वही सच्चा निशान है। ऐसा ज्ञान कैसे प्रगटे, वह इन समयसारादि में आचार्यदेव ने अलौकिक ज्ञान से समझाया है। अहो, सीमंधरस्वामी के पास जाकर ऐसा अपूर्व श्रुतज्ञान कुन्दकुन्दस्वामी ने भरतक्षेत्र के जीवों को देकर अपार उपकार किया है।

मोक्षमार्ग में 'ज्ञान' किसे कहना?

शुद्ध आत्मा को जो ध्येय बनावे, अर्थात् स्वसन्मुख होकर उसकी जो साधना करे, वही मोक्षमार्ग का ज्ञान है; इसके बिना मात्र शास्त्र-अभ्यास, या द्वीप-समुद्र आदि का ज्ञान, उसे

वास्तव में ज्ञान नहीं कहते, क्योंकि वह ज्ञान मोक्ष को नहीं साधता, अपने आत्मा को ध्येय नहीं बनाता। महावीरादि तीर्थंकरदेवों की देशना तो ऐसी है कि अपने आत्मा को ध्येय बनाकर स्वसन्मुख होकर उसकी साधना करो।

ज्ञान का स्वरूप जानने से आत्मा का स्वरूप जानने में आता है, क्योंकि ज्ञान का लक्ष्य आत्मा है; जैसे तीर अपने लक्ष्य से सन्मुख होकर उसे वेधता है, वैसे सम्यग्ज्ञानरूपी सूक्ष्मबाण अपने लक्ष्यरूपी शुद्धात्मा के सन्मुख होकर उसे वेधता है—अनुभव करता है। ऐसा ज्ञान मोक्ष का साधक है। वह ज्ञान राग को अपना निशान नहीं बनाता, राग से पार होकर शुद्धात्मा में पहुँच जाता है। इसलिये हे भव्य जीवो! ज्ञान का ऐसा स्वरूप जानकर उसकी भक्ति से आराधना करो! ऐसे ज्ञान के बिना संयम या ध्यान नहीं होता। भले ही पंच महाव्रतों का पालन करें किंतु ज्ञान के बिना जीव को असंयमी और संसारमार्गी ही कहा है, तथा ज्ञान में शुद्धात्मा को जिसने ध्येय बनाया, वह असंयमी हो तो भी मोक्षमार्गी है।

'णाणं आदत्थं' अर्थात् जो आत्मा में स्थित है, वही जिनमार्ग में सच्चा ज्ञान है—अथवा आत्मा ही जिसका अर्थ है—प्रयोजन है, ऐसा ज्ञान वही जिनमार्ग का ज्ञान है, जिसमें आत्मा का प्रयोजन सिद्ध न हो, जिनस्वरूप की साधना न हो, ऐसे शास्त्राभ्यास को भी जिनमार्ग में 'ज्ञान' नहीं कहते।

जो जाने, वह ज्ञान—किसे जाने? अपने लक्ष्यरूप शुद्धात्मा को जाने, वह ज्ञान है। जैसे बाण उसे कहते हैं कि जो अपने लक्ष्य को वेधे, उसीप्रकार अपने परमात्मस्वरूप का लक्ष्य करे—जाने—अनुभव करे, उसे ही जैनशासन में ज्ञान कहते हैं। जिस निजस्वरूप की साधना करनी है, उसे जो न साधे, वह ज्ञान कैसा?

ज्ञान का लक्ष्य राग नहीं किंतु ज्ञान से अभिन्न ऐसा आत्मस्वभाव ही ज्ञान का लक्ष्य है। ऐसे लक्ष्य को ध्येय बनाकर जानना, वह तो (अर्जुन के समान) अत्यंत धीरता का कार्य है; अस्थिर मन से आत्मा की साधना नहीं होती। आत्मा को साधने के लिये जो ज्ञान अंतर्मुख हुआ, वह अत्यंत धीर-शांत तथा अनाकुल है, अनंतगुणों के मधुर स्वाद का एकसाथ आस्वादन करता हुआ वह ज्ञान प्रगट होता है; चैतन्य के रस का अतीन्द्रिय स्वाद उसमें भरा है। ऐसे ज्ञान को पहचानकर आत्मा की साधना करना—वह भगवान वीर का मार्ग है।

ज्ञान का ध्येय शुद्धात्मा; ज्ञानी की विनय से उसे जानो

जो जीव पंचपरमेष्ठी के प्रति विनयवंत है, वह मोक्षमार्ग के ज्ञान को प्राप्त होता है, इससे वह जीव मोक्षमार्ग के लक्ष्यरूप परम आत्मस्वरूप को देखता है–जानता है–अनुभव करता है। ऐसा ज्ञान जिनमार्ग में ज्ञानियों को ही परंपरा से प्राप्त होता है; अतः जिसे ज्ञानी के प्रति विनय–बहुमान न हो, वे जीव सम्यग्ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकते। सर्वज्ञ की परंपरा में ज्ञानी–आचार्यों की विनय छोड़कर जो जिनमार्ग से भ्रष्ट हुए, वे मोक्षमार्ग का सच्चा ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते।

ज्ञानी की सच्ची विनय भी तभी होती है कि जब उनके सम्यगज्ञान को पहिचाने। पहिचान के बिना बहुमान किसका? ज्ञान का धनुष्य व श्रद्धा के बाण द्वारा धर्मी जीव परमात्मस्वरूप को लक्ष्य में लेकर मोक्षमार्ग को साधता है, उसे अपने लक्ष्य का विस्मरण नहीं होता। भाई, तेरा लक्ष्य तो यथार्थ बना। लक्ष्य ही जिसका विपरीत हो, वह उसे कैसे साधेगा? लक्ष्य हो पूर्व की ओर तथा निशान लगाये पश्चिम की ओर तो वह लक्ष्य को नहीं साध सकता, उसका निशान व्यर्थ जायेगा; वैसे मोक्षमार्ग में ध्येय तो रागरहित चैतन्यस्वभावी आत्मा है, उसका लक्ष्य न करके उससे विरुद्ध शुभराग को लक्ष्य बनावे तो मोक्षमार्ग की साधना नहीं हो सकती। इसलिए हे भव्य! प्रथम तो तू ज्ञानी के निकट लक्ष्यरूप शुद्धात्मा का ज्ञान कर, और उसे ही ध्येयरूप बनाकर उसका ध्यान कर। उसके ध्यान से मोक्षमार्ग की साधना होगी। ज्ञानी के निकट सत्य जानने से मार्ग संबंधी तेरी घबराहट मिटेगी और तेरा ज्ञान अपने सत्य निशान की ओर (शुद्धात्मा की ओर) झुक जायेगा; शुद्धात्मा के आश्रय से सुखपूर्वक तेरी मोक्षमार्ग की साधना होगी।

ज्ञानी–गुरुओं के निकट जो शुद्धात्मारूप लक्ष्य को नहीं जानता व राग द्वारा मोक्षमार्ग साधना चाहता है, उसे मार्ग की प्राप्ति कभी नहीं होती। मोक्षमार्ग तो वीतराग–सुखरूप है, और राग तो दुःखरूप है; स्वयं दुःखरूप राग, वह मोक्षसुख का कारण कैसे हो सकता है? जीवस्वरूप आत्मा को जो जाने, वही सच्चा बोध है। बोधस्वरूप को न जाने, उसे बोध कौन कहे? राग में ऐसी शक्ति नहीं कि जो ज्ञानस्वरूप आत्मा को जाने। ज्ञानस्वरूप आत्मा जिसमें जानने में आवे, ऐसे बोध का उपदेश भगवान महावीर ने मोक्षमार्ग में किया है। श्रीगुरु के निकट विनयवंत शिष्य जाकर पूछता है कि, हे प्रभु! सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो? तब श्रीगुरु कृपा

करके उसे कहते हैं कि हे भव्य! ज्ञान की प्राप्ति अंतर्मुख आत्मा में से होती है, अत: तू बाह्य (हमारा भी) लक्ष्य छोड़कर तेरे आत्मा के सन्मुख हो, पर को लक्ष्य बनाने से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी; स्व-को लक्ष्य बनाने से ज्ञान की प्राप्ति होगी।

अहो! जैनशासन के अलौकिक ज्ञान को कुन्दकुन्दस्वामी ने प्रसिद्ध किया। अहा, जैनगुरु कैसे परम निस्पृह हैं! वे स्वयं का भी आश्रय छोड़ने का कहकर जीव को निजस्वभाव का ही आश्रय कराते हैं। ऐसे वीतरागी निस्पृह गुरुओं के बताये हुए सत्य मोक्षमार्ग का आश्रय छोड़कर जिन्होंने कुगुरु कथित कुमार्ग का आश्रय लिया, वे अपना अहित कर रहे हैं। ऐसे जीवों पर करुणा करके इन वीतरागी संतों ने सत्यमार्ग जगत में प्रसिद्ध किया है। भाई, इस मार्ग की आराधना से ही तुझे मोक्षमार्ग का सच्चा ज्ञान होगा और अल्पकाल में भव के दु:खों का अंत आ जायेगा। अत: जिनमार्ग को जानकर भक्ति से आत्मा की आराधना कर।

रे जीव! तीन लोक में सबसे उत्तम महिमावंत अपना आत्मा है, उसको तू उपादेय जान। वही महा सुंदर व सुखरूप है। जगत में सर्वोत्कृष्ट ऐसे आत्मा को तू स्वानुभवगम्य कर। तेरा आत्मा ही तुझे आनंदरूप है, अन्य कोई वस्तु तुझे आनंदरूप नहीं है। आत्मा के आनंद का अनुभव जिसने किया है, ऐसे धर्मात्मा का चित्त अन्य कहीं भी नहीं लगता, बार-बार आत्मा की ओर ही झुकता है। आत्मा का अस्तित्व जिसमें नहीं, आत्मा का जीवन जिसमें नहीं, ऐसे परद्रव्यों में धर्मी का चित्त कैसे लगे? आनंद का समुद्र जहाँ देखा है, वहाँ ही उनका चित्त लगा है।

स्व. कविवर दीपचंदजी कृत

ज्ञान-दर्पण

[गताँक से आगे]

सुद्ध उपयोगी देखि गुणमैं मगन होय जाकौ नाम सुनि हीए हरख धरीजिए।
मेरौ पद मोहिमैं लखायो जिहि संगसेती, सोही जाकी उरि भाय भावना करीजिए॥
साधरमी जन जामैं प्रापति स्वरूप ह्वै, ताकौ संग कीजै और परिहरि दीजिए।
यतिजन सेवा वह जान्यौ भेद सम्यककौ, कहै 'दीप' याकौं लखि सदा सुख कीजिए॥111॥

मिथ्यामति मूढ़ जे सरूप कौ न भेद जानैं,
पर हीकौं मानै जाकी मानि नहीं कीजिए।
महा सिवमारग कौ भेद कहुँ पावै नाहिं,
मिथ्यामग लागे ताकौं कैसैं करि थीजिए।
अनुभौ सरूप लहि आपमैं मगम ह्वै है,
तिनही के संग ज्ञान-सुधारस पीजिए।
मिथ्यामग त्यागि एक लागिए सरूप ही मैं,
आप पद जानि आप पदकौं लखीजिए॥112॥
जाकौ चिदलच्छन पिछानि परतीति करै,
ज्ञानमई आप लखि भयौ है हितारथी।
राग दोष मोह भेटि भेट्यौ है अखंड पद,
अनुभौ अनूप लहि भयौ निज स्वारथी।
तिहुँलोकनाथ यौ विख्यात गायौ वेदनि मैं,
तामैं थिति कीनी कीनौं समकित सारथी।
सरूप के स्वादी अहलादी चिदानंद ही के,
तेई सिवसाधक पुनीत परमारथी॥113॥

(सवैया तेईसा)

पैड़ी चढै सुध चाल चलैं, मुकताफल अर्थ की ओर ढरैं।
कंटकलीन कमल लखैं, तिहि दोष विचारिकै त्यागि धरैं।
उज्जल वाणि नहीं गुणहानि, सुहावनि रीति कौं न विसरैं।
अक्षर मानसरोवरमांहि, कितेक विहंग किलोल कथैं॥114॥

धन्य है उनको... जो स्वानुभव की चर्चा करते हैं

[चैतन्यस्वभाव के प्रति मुमुक्षु को उल्लास होता है; चैतन्य की अचिंत्य अपार महिमा जिसने लक्षगत की, उसने अपने आत्मा को मोक्ष के बीज बोये।]

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।
निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्॥23॥

अध्यात्मरस की प्रीति कहो या चैतन्यस्वभाव की प्रीति कहो, उसकी महिमा व फल दर्शाते हुए वनवासी दिगंबर संत श्री पद्मनंदीस्वामी पद्मनंदी पच्चीसी में कहते हैं कि जिसने प्रीतिचित्तपूर्वक-उत्साह से इस चैतन्यस्वरूप आत्मा की वार्ता भी सुनी है, वह भव्य जीव अवश्यमेव भविष्य में निर्वाण प्राप्त करता है। चैतन्य के साक्षात् स्वानुभव की तो क्या बात! किंतु जिसके अंतर में उसकी ओर प्रेम जगा और रागादि का प्रेम छूटा, वह जीव भी अवश्य मोक्ष पावेगा! शास्त्रकार ने एक खास शर्त रखी है कि 'चैतन्य के प्रति प्रेम से' उसकी बात सुनें; अतएव जिसके अंतर में जरा सा भी राग का प्रेम हो, राग से लाभ होने की बुद्धि हो, उसको चैतन्य का सच्चा प्रेम नहीं है किंतु राग का प्रेम है, उसको चैतन्यस्वभाव के प्रति भीतर से सच्चा उल्लास नहीं आता। यहाँ तो चैतन्य की प्रीतिवाले सुलटे जीव की बात है। राग का प्रेम व देह-परिवार का प्रेम तो जीव अनादि से करता ही आया है, किंतु अब उस प्रेम को तोड़ के जिसने चैतन्य का प्रेम जागृत किया; वीतरागी स्वभाव रस का रंग लगाया, वह जीव धन्य है... वह निकट मोक्षगामी है। चैतन्य की बात सुनते ही भीतर में रोमांच उल्लसित हो जाय... असंख्यप्रदेश चमक उठें कि वाह! मेरे आत्मा की यह कोई अपूर्व नयी बात मुझे सुनने को मिली, कभी जो नहीं सुना था, वह चैतन्यतत्त्व आज मेरे सुनने में आया; पुण्य-पाप से भिन्न ही यह कोई अनोखी बात है; इस तरह अंतरस्वभाव का उल्लास ला करके, और बहिर्भावों का (पुण्य-पाप आदि परभावों का) उत्साह छोड़कर जिसने एक बार स्वभाव का श्रवण किया, उसका बेड़ा पार! श्रवण तो निमित्त है किंतु इससे उसके भाव में अंतर पड़ गया, स्वभाव और परभाव के बीच में थोड़ी सी तराड़ पड़ गई। अब वह उन दोनों का भिन्न अनुभव करके ही

रहेगा। 'मैं ज्ञायक चिदानंदघन हूँ—एक समय में परिपूर्ण शक्ति से भरा हुआ ज्ञान व आनंद का सागर हूँ' ऐसी अध्यात्म की बात सुनानेवाला संत-गुरु भी महा भाग्य से ही मिलता है। और महाभाग्य से जब ऐसी बात सुनने को मिली तब, प्रसन्नचित्त से अर्थात् इसके सिवाय दूसरे सबकी प्रीति छोड़ के और इसकी ही प्रीति करके, 'मुझे तो यही समझना है, इसका ही अनुभव करना है' ऐसी गहरी उत्कंठा जगाके, उपयोग को इस और जरा थँभा के, जिस जीव ने सुना, वह जीव अवश्य अपनी प्रीति को आगे बढ़ाकर स्वानुभव करेगा और मुक्ति को पावेगा। इसलिये कहा कि, धन्य है उनको जो अध्यात्मरस के रसिक होकर ऐसी स्वानुभव की चर्चा करते हैं।

प्रश्न—जीव अनंत बार त्यागी हुआ व भगवान के समवसरण में भी गया, तब क्या उसने शुद्धात्मा की बात नहीं सुनी होगी?

उत्तर—देखिये, यहाँ 'प्रसन्न चित्त से' सुनने का कहा है; अतएव वैसे ही सुन लेने की बात नहीं है, किंतु अंतर में चैतन्य का उल्लास ला करके जो सुनें, उनकी बात है।—क्या सुनें? कि चैतन्यस्वरूप आत्मा की बात सुनें। किस प्रकार से सुनें? तो कहते हैं कि उल्लास के साथ सुनें; राग के उल्लास से नहीं किंतु चैतन्य के उल्लास से सुनें। पुण्य-पाप या बाह्यक्रियाएँ चैतन्य का स्वरूप नहीं हैं, चैतन्य का स्वरूप उन सबसे भिन्न है। परद्रव्य-परक्षेत्र-परकाल व परभाव से रहित अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से सदैव परिपूर्ण आत्मस्वरूप है; इसकी बात सुनने पर प्रमोद आये, उसको ही यहाँ 'श्रवण' कहा है। ऐसे श्रवण से शुद्धात्मा को लक्षगत करना, सो अपूर्व है। इसके बिना, भले भगवान की सभा में बैठा हुआ शुद्धात्मा की बात सुनता हो किंतु भीतर में यदि राग के पक्ष का (राग के आश्रय से लाभ की बुद्धि का) सेवन करता हो, व्यवहार के शुभराग की बात आते ही भीतर में उसका ऐसा पक्ष हो जाता हो कि 'देखो, यह हमारी बात आयी!'—तो आचार्यदेव कहते हैं कि उस जीव ने शुद्धात्मा की बात प्रीति से सुनी नहीं है। समयसार में कहा है कि जीव को शुद्धनय का पक्ष भी पूर्व में नहीं आया; शुद्धनय का पक्ष कहो या चैतन्य की प्रीति कहो, या शुद्धात्मा का उल्लास कहो, ये सब एक ही अर्थ के सूचक हैं। जैन का द्रव्यलिंगी साधु होकर के भी जो मिथ्यादृष्टि बना रहा, उसका यह कारण है कि भीतर में से उसको चैतन्य का उल्लास नहीं आया, किंतु अंतर में सूक्ष्म विकार का ही उल्लास रहा। प्रगट में तो वह राग से धर्म होने को नहीं कहता, किंतु भीतर अभिप्राय की गहराई

में उसको विकार का रस रह गया है। शुद्ध चैतन्य का सच्चा पक्ष किया, ऐसा तभी कहलायेगा जब उसको लक्षगत करे। समयसार की चौथी गाथा में कहते हैं कि—

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥

काम-भोग व बंध की कथा तो सभी जीवों ने पूर्व में अज्ञान अवस्था में अनंत बार सुनी है, अनंत बार परिचय में ली है एवं अनंत बार उसका अनुभव भी किया है, परंतु पर से विभक्त ज्ञानानंदस्वरूप एकाकार आत्मा की बात न तो पूर्व में कभी सुनी है, न परिचय में ली है और न उसका अनुभव किया है। देखिये, यहाँ मात्र शब्द श्रवण में आना या नहीं आना, उसको ही श्रवण नहीं गिना, किंतु जिसको जिसकी रुचि-भावना-अनुभव है, उसको उसी का श्रवण है। कानों में चाहे शुद्धात्मा के शब्द पड़ रहे हों, परंतु भीतर में यदि राग की मिठास-भावना व अनुभव वर्तता है तो वह जीव सचमुच में शुद्धात्मा की कथा नहीं सुन रहा है परंतु रागकथा का ही श्रवण कर रहा है। शुद्धात्मा का श्रवण तब ही गिना जाता है, जबकि शुद्धात्मा को लक्षगत करे।

प्रश्न—बहुत जीव ऐसे भी हैं कि जिन्होंने अबतक त्रसपर्याय ही कभी नहीं पायी, अर्थात् उनको कभी कान ही नहीं मिले; तब फिर उन जीवों ने भी काम-भोग-बंधन की कथा अनंत बार सुनीं—ऐसा किस तरह कहा जा सकता है ?

उत्तर—उसमें भी उपर्युक्त न्याय लागू होता है। जिसप्रकार, शुद्धात्मा की जिसको रुचि नहीं है, उसको शुद्धात्मा के शब्द कान में पड़ते हुए भी, उसके शुद्धात्मा का श्रवण नहीं कहते, किंतु बंधकथा का ही श्रवण कहते हैं; क्योंकि उस वक्त भी उसके भावश्रुत में तो बंधभाव का ही सेवन हो रहा है; उसीप्रकार, निगोदादि के जीवों को बंधकथा के शब्द भले ही श्रवण में नहीं आते, किंतु उनके भाव में तो बंधभाव का सेवन चल ही रहा है, इसलिये वे जीव बंधकथा ही सुन रहे हैं—ऐसा कहने में आता है। इसप्रकार जिस उपादान के भाव में जिसका पोषण चल रहा है, उसका ही वह श्रवण कर रहा है, ऐसा कहने में आता है। भाई! तेरे भाव की रुचि न बदले तो अकेले शब्द तुझे क्या करेंगे ? यहाँ तो कहते हैं कि अहो, एकबार भी अंतर्लक्ष करके चैतन्य के उल्लास से उसकी बात जिसने सुनी, उसके भवबंधन टूटने लगे; उसके ही सच्चा

श्रवण कहने में आता है। इस अपेक्षा से कहते हैं कि धन्य है उनको जो स्वानुभव की चर्चा करते हैं। द्रव्यलिंगी दिगम्बर मुनि होकर चाहे ग्यारह अंग व नव पूर्व तक जान ले, परंतु अंतरंग में पुण्य-पाप से पार चैतन्यस्वरूप को यदि दृष्टि में नहीं लिया तो, यहाँ पर कहते हैं कि शुद्धात्मा की बात उसने सुनी ही नहीं, उसने चैतन्य का पक्ष नहीं किया, किंतु राग के पक्ष में ही वह रुक गया है। उसको राग में उल्लास आया किंतु चैतन्यस्वभाव में उल्लास न आया; यदि स्वभाव में उल्लास आवे, तब तो उसकी ओर वीर्य का झुकाव हो करके उसका अनुभव अवश्य करे। अहा! मैं तो चैतन्यस्वरूप हूँ, वीतरागी संतों की वाणी मेरे चैतन्यस्वरूप को ही प्रकाशित करती है, इसतरह अंतर में चैतन्य की झनझनाहट जगाके जिसने उत्साह से-वीर्योल्लास से श्रवण किया, वह अल्पकाल में ही स्वभाव के उल्लास के बल से मोक्ष को साधेगा। ऐसे चैतन्य की महिमा आना, वह मांगलिक है।

ऊपर पद्मनंदी-पंचविंशतिका की जो गाथा दी गई है, वह 'एकत्वस्वरूप अधिकार' की गाथा है; उसमें कहा है कि इस चैतन्य के एकत्वस्वरूप के प्रति प्रसन्नता व उल्लास ला करके, और जगत के उल्लास तोड़ करके, परभाव का प्रेम छोड़के श्रवण किया—'वाँचन' किया, ऐसा नहीं कहके, 'श्रवण' किया ऐसा कहा-अर्थात् श्रवण करानेवाले ज्ञानी-संत के पास में विनयपूर्वक सुना, वह जीव अवश्यमेव स्वानुभव प्रगट करके मुक्ति पावेगा। अहा, देखो तो सही यह आत्मस्वरूप की महिमा! पंडित टोडरमल्लजी ने २०० वर्ष पहले अपने साधर्मी को लिखे पत्र में इस गाथा का उल्लेख किया है। उस वक्त के गृहस्थ भी कैसे अध्यात्मप्रेमी थे, इसका ख्याल यह पत्र पढ़ने से आ जाता है। समयसार की पाँचवीं गाथा में श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि एकत्व-विभक्त आत्मस्वरूप जो कि जीवों ने पूर्व में कभी सुना नहीं, अनुभव में लिया नहीं, उस एकत्व-विभक्त स्वरूप को मैं अपने आत्मा के समस्त वैभव से इस समयसार में दर्शाता हूँ; हे भव्य श्रोताओं! तुम अपने स्वानुभव से उसको प्रमाण करना, मात्र शब्दों से नहीं किंतु स्वानुभव से प्रमाण करना; मैं जैसा भाव कहता हूँ, वैसा ही भाव तुम्हारे आत्मा में प्रगट करना। शब्दों को ही सामने देख करके रुक मत जाना, किंतु उनके वाच्य की ओर ढूकके शुद्धात्मा का स्वानुभव करना। यहाँ भी पत्र के प्रारंभ में ही स्वानुभव का स्मरण किया है कि 'चिदानंदघन के स्वानुभव से तुमको सहजानंद की वृद्धि चाहता हूँ।'

भगवान आत्मा चैतन्यवस्तु है, उसके असली स्वरूप में तो राग का भी प्रवेश नहीं है। अहा! अकेली चैतन्यवस्तु, जो पर से तो निरपेक्ष एवं परभावों से भी निरपेक्ष, उसके प्रति अंतर में उल्लास लाकर ज्ञानी के श्रीमुख से जिसने उसकी बात सुनी, उसका परिणमनचक्र मोक्ष की ओर फिरा, अल्पकाल में वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र व केवलज्ञान प्रगट करके मोक्षपद पावेगा। चैतन्य की कोई अचिंत्य अपार महिमा है; उस महिमा को जिसने लक्षगत किया, उसने अपने आत्मा में मोक्ष के बीज बोये।

अतीन्द्रिय सुख का उपाय

भाई, तुझे अपने आत्मा का अनुभव करना हो तो तू जगत को अपने से अत्यंत भिन्न अचेतन समान देख... अर्थात् तेरी चेतना का या तेरे सुख का एक अंश भी उसमें नहीं है—ऐसा जान। जगत में तो दूसरे अनंत जीव हैं—सिद्धभगवान हैं, अरिहंत हैं, मुनिवर हैं, धर्मात्मा हैं; अनंत जीव एवं अजीव पदार्थ हैं और उन सबकी क्रिया उनमें होती रहती है, परंतु यह आत्मा जहाँ अपने उपयोग को स्वानुभव की ओर झुकाता है, वहाँ संपूर्ण जगत शून्यवत् भासित होता है; जगत तो जगत में है ही, परंतु इसका उपयोग उन परपदार्थों की ओर से हट जाने के कारण उसमें अपने आत्मा का ही अस्तित्व है और जगत शून्य है। उपयोग को अंतर्मुख करके इसप्रकार आत्मा का पर से शून्य अनुभव करे, वही आत्मा के परम सुख को भोगता है—अन्य जीव आत्मा के सुख का उपभोग नहीं कर सकते। आत्मा के अतीन्द्रिय सुख के अभिलाषी जीव को जगत की क्रिया से पार अपने ज्ञानानंदस्वरूप को जानना चाहिये।

निर्विकल्प-स्वानुभूति होने का सुंदर वर्णन

स्वरूप के चिंतन में आनंद तरंगें उठती हैं... रोमांच होता है!

''अब सविकल्प ही के द्वार से निर्विकल्प होने का विधान कहते हैं; वह सम्यग्दृष्टि कदाचित् स्वरूपध्यान करने को उद्यमी होता है; वहाँ प्रथम स्व-पर स्वरूप का भेदविज्ञान करे; नोकर्म-द्रव्यकर्म-भावकर्म से रहित चैतन्यचित्चमत्कारमात्र अपना स्वरूप जाने; पीछे पर का भी विचार छूट जाय, और केवल स्वात्मविचार ही रहता है; वहाँ निजस्वरूप में अनेक प्रकार से अहंबुद्धि धरता है, 'मैं चिदानंद हूँ, शुद्ध हूँ, सिद्ध हूँ' इत्यादि विचार होने पर सहज ही आनंद-तरंग उठती हैं, रोमांच होता है; इसके बाद ऐसा विचार भी छूट जाय और केवल चिन्मात्रस्वरूप भासने लगे, वहाँ सर्व परिणाम उस रूप में एकाग्र होकर प्रवर्ते; दर्शन-ज्ञानादिक का वा नय-प्रमाणादिक का विचार भी विलय हो जाय। सविकल्पता से जिस चैतन्यस्वरूप का निश्चय किया था, उसी में व्याप्य-व्यापक होकर ऐसा प्रवर्ते कि जहाँ ध्याता-ध्येयपना दूर हो जाय। ऐसी दशा का नाम निर्विकल्प अनुभव है।''

एक क्षणभर के स्वानुभव से ज्ञानी के जो कर्म टूटते हैं, अज्ञानी के लाख उपाय करने पर भी इतने कर्म नहीं टूटते। सम्यक्त्व की व स्वानुभव की ऐसी कोई अचिंत्य महिमा है। यह समझकर हे जीव! इसकी आराधना में तू तत्पर हो।

देखो, यह स्वानुभव की अलौकिक चर्चा। यहाँ तो एकबार जिसको स्वानुभव हो गया है और फिर से वह निर्विकल्पस्वानुभव करता है, उसकी बात की है; परंतु पहली बार जो निर्विकल्प-स्वानुभव का उद्यम कर रहा है, वह भी इसी प्रकार से भेदज्ञान व स्वरूपचिंतन के अभ्यास द्वारा परिणाम को निजस्वरूप में तल्लीन करके स्वानुभव करता है। इस निर्विकल्प-

अनुभव के समय आत्मा अपने आपमें व्याप्य-व्यापकरूप से ऐसा तल्लीन वर्तता है—अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय की ऐसी एकता हो जाती है कि ध्याता-ध्येय का भेद भी वहाँ नहीं रहता; आत्मा अपने आपमें लीन होकर अपना स्वानुभव करता है। वहाँ स्वानुभव के परम आनंद का भोगना है परंतु उसका विकल्प नहीं है। एकबार ऐसा निर्विकल्प अनुभव जिसके हुआ हो, उसके ही निश्चयसम्यक्त्व है, ऐसा जानना। ऐसे अनुभव की रीति यहाँ दिखलाते हैं।

यहाँ सम्यग्दृष्टि जिसप्रकार से निर्विकल्प-अनुभव करता है, यह दिखाया है, इसके उदाहरण के अनुसार दूसरे जीवों को भी निर्विकल्प-अनुभव करने का यही उपाय है—ऐसा समझ लेना।

सम्यग्दृष्टि को शुभाशुभ के समय सविकल्पदशा में सम्यक्त्व किसप्रकार वर्त रहा है, वह पहले समझाया; अब यह कहते हैं कि 'वह सम्यग्दृष्टि कदाचित् स्वरूपध्यान करने का उद्यमी होता है'—चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को बार-बार निर्विकल्पध्यान नहीं होता, परंतु कभी-कभी शुभाशुभप्रवृत्ति से दूर होकर, शांतपरिणाम से स्वरूप का ध्यान करने का उद्यमी होता है, जिस स्वरूप का अपूर्व स्वाद स्वानुभव में चखा है, उसी का फिर-फिर अनुभवन करने के लिये वह उद्यम करता है। तब प्रथम तो स्व-पर के स्वरूप का भेदविज्ञान करे अर्थात् पहले जो भेदज्ञान किया है, उसी को फिर से चिंतन में लावे; यह स्थूल देहादि तो मेरे से स्पष्टतः भिन्न हैं, इसके कारणरूप जो भीतर के सूक्ष्म द्रव्यकर्म, वह भी आत्मस्वरूप से अत्यंत भिन्न हैं, दोनों की जाति ही भिन्न है। मैं चैतन्य और वह जड़; मैं परमात्मा और वह परमाणु—ऐसे दोनों की भिन्नता है; और भिन्नता होने से कर्म मेरा कुछ नहीं करता। अब अंदर में, आत्मा की पर्याय में उत्पन्न होनेवाले राग-द्वेष-क्रोधादि भावकर्म उनसे भी मेरा स्वरूप अत्यंत भिन्न है; मेरे ज्ञानस्वरूप की और इन रागादि परभावों की जाति ही जुदी है; राग का वेदन तो आकुलतारूप है और ज्ञान का वेदन तो शांतिमय है।—ऐसे बहुत प्रकार से द्रव्यकर्म-नोकर्म व भावकर्म से अपने स्वरूप की भिन्नता का चिंतन करे; इन सबसे भिन्न मैं चैतन्यचमत्कारमात्र हूँ—ऐसा विचार करे। ऐसे वस्तुस्वरूप के निर्णय में ही जिसकी भूल हो, वह तो स्वरूप के ध्यान का सच्चा उद्यम नहीं कर सकता। क्योंकि जिसका ध्यान करने का है, उसकी पहले पहिचान तो होनी चाहिए न! पहिचाने बिना ध्यान किसका? इसप्रकार स्व-पर की भिन्नता के विचार से

परिणाम को जरा स्थिर करे, बाद में पर का विचार छूटकर केवल निजस्वरूप का ही विचार रहे। जिस स्वरूप का पहले अनुभव किया है अथवा जिस स्वरूप को निर्णय में लिया है, उसकी अत्यंत महिमा ला-लाकर उसी के विचार में मन को एकाग्र करता है। परद्रव्यों में से व परभावों में से तो अहंबुद्धि छोड़ दी है, और अपने निजस्वरूप का ही अपना जानके उसी में अहंबुद्धि की है। मैं चिदानंद हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मैं सिद्ध हूँ, मैं सहज सुखस्वरूप हूँ, अनंत शक्ति का निधान मैं हूँ, सर्वज्ञस्वभावी मैं हूँ' इत्यादि प्रकार से अपने निजस्वरूप में ही अहंबुद्धि कर-करके उसका चिंतवन करता है। नियमसार में प्रभु कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि—

केवलणाणसहावो केवलदंसणसहाव सुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो सोहं इदि चिंतए णाणी॥96॥
णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइं।
जाणदि पस्सदि सव्वं सोहं इदि चिंतए णाणी॥97॥

—ऐसे निज आत्मा की भावना करने की शिक्षा मुमुक्षु को दी है। और कहा है कि ऐसी भावना के अभ्यास से मध्यस्थता होती है, अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी ऐसी निजात्मभावना से प्रगट होते हैं। सम्यग्दर्शन होने के बाद में, एवं सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिये भी, ऐसी ही भावना व ऐसा चिंतन कर्तव्य है। 'सहज शुद्धात्मा की अनुभूति जितना ही मैं हूँ, मेरे स्वसंवेदन में आ रहा हूँ-यही मैं हूँ' ऐसे सम्यक् चिंतन में सहज ही आनंदतरंगें उठती हैं और रोमांच होता है...

देखो तो सही, इसमें चैतन्य की अनुभूति के कितने रस का घोलन हो रहा है! ऊपर में जितना वर्णन किया, वहाँ तक तो अभी सविकल्पदशा है। इस चिंतन में जो 'आनंदतरंग उठती हैं, वह निर्विकल्प अनुभूति का आनंद नहीं है परंतु स्वभाव तरफ के उल्लास का आनंद है, शांतपरिणाम का आनंद है; और इसमें स्वभाव के तरफ के अतिशय प्रभु के कारण रोमांच हो उठता है। रोमांच अर्थात् विशेष उल्लास; स्वभाव के प्रति विशेष उत्साह। जैसे संसार में भय का या आनंद का कोई विशिष्ट खास प्रसंग बनने पर रोमरोम उल्लसित हो जाता है, उसको रोमांच हुआ कहते हैं, वैसे यहाँ स्वभाव के निर्विकल्प अनुभव के खास-विशिष्ट प्रसंग में धर्मीको आत्मा के असंख्यप्रदेश में स्वभाव के अपूर्व उल्लास का रोमांच होता है। इसके बाद

चैतन्यस्वभाव के रस की उग्रता होने पर ये विचार (विकल्प) भी छूट जाय और परिणाम अंतर्मग्न होकर केवल चिन्मात्रस्वरूप भासने लगे, सर्व परिणाम स्वरूप में एकाग्र होकर वर्ते, उपयोग स्वानुभव में प्रवर्ते, इसी का नाम निर्विकल्प आनंद का अनुभव है। वहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्रसंबंधी या नय-प्रमाणादि का कोई विचार नहीं रहता, सभी विकल्पों का विलय हो जाता है। यहाँ पर स्वरूप में ही व्याप्य-व्यापकता है अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों एकमेक-एकाकार अभेदरूप से अनुभव में आते हैं। अनुभव करनेवाली पर्याय स्वरूप में व्याप गई है, जुदी नहीं रहती। परभाव अनुभव से बाहर रह गये, परंतु निर्मल पर्याय तो अनुभूति के साथ मिल गई।

पहले, विचारदशा में ज्ञान ने जिस स्वरूप को लक्ष में लिया था, उसी स्वरूप में ज्ञान का उपयोग जुड़ गया, और बीच में से विकल्प निकल गया, अकेला ज्ञान रह गया, तब अतीन्द्रिय निर्विकल्प-अनुभूति हुई, परम आनंद हुआ। ऐसी अनुभूति में प्रतिक्रमण सामायिक प्रत्याख्यान आदि सभी धर्म समा जाते हैं। इस अनुभूति को ही 'जैनशासन' कहा है; यही वीतरागमार्ग है, यही जैनधर्म है, यही श्रुत का सार है, संतों की व आगम की यही आज्ञा है। शुद्धात्म-अनुभूति की अपार महिमा है, वह कहाँ तक कहें ? आप स्वयं अनुभूति करें, तभी इसकी खबर पड़े।

किसकी है यह बात ?—गृहस्थ सम्यग्दृष्टि की बात है। जो भी घर कुटुंब-परिवार के बीच में रहा है, व्यापार-धंधा-रसोई आदि का भाव करता है और अंतर में इन सबसे भिन्न शुद्धात्मा को जानता भी है, वह जीव उद्यमपूर्वक अपने परिणाम को बाहर से खींचके, निजस्वरूप में उपयोग को लगाता है और निर्विकल्प-अनुभव करता है, उसकी यह बात है। ऐसा अनुभव चारों गति के जीवों को (तिर्यंच व नारकी को भी) हो सकता है। पहले जिसने सच्चा तत्त्वनिर्णय किया हो, वीतरागी देव-गुरु-धर्म की पहिचान की हो, नवतत्त्व के बारे में विपरीतता दूर की हो, अपनी पर्याय में आस्रव-बंधरूप विकार है, शुद्ध द्रव्य के आश्रय से वह मिट जाता है और शुद्धात्म अनुभूति हो के संवर-निर्जरारूप शुद्धदशा प्रगट होती है—ऐसे अनेकांत द्वारा द्रव्य की सभी विवक्षा के ज्ञानपूर्वक शुद्ध अनुभव होता है। अन्यमति लोग जिस शुद्ध अनुभव की बात कहते हैं उसमें, और जैन के शुद्ध अनुभव में बहुत बड़ा अंतर है; अन्य

लोग तो पर्याय में पहले अशुद्धता थी और वह टल के शुद्ध पर्याय हुई—इसका स्वीकार किये बिना एकांत शुद्ध-शुद्ध की बात करते हैं, परंतु ऐसा (-शुद्धपर्याय से रहित) शुद्ध अनुभव नहीं होता। जैनों का शुद्ध अनुभव तो शुद्ध-पर्याय के स्वीकार के साथ है। पहले अशुद्धता थी, वह मिटके शुद्धपर्याय हुई-इसका यदि स्वीकार न किया जाये तो शुद्धता का अनुभव किया किसने?—और उस अनुभव का फल किसमें आया? द्रव्य और पर्याय इन दोनों के स्वीकाररूप अनेकांत के बिना अनुभव, अनुभव का फल, यह कुछ भी नहीं बन सकता। पर्याय अंतर्मुख होकर जब शुद्धस्वभाव का आराधन-सेवन-ध्यान करे, तभी शुद्ध अनुभव होता है।

यह शुद्ध अनुभव अर्थात् निर्विकल्प अनुभव क्या चीज़ है और कैसी यह अंतरंगदशा है!—यह जिज्ञासुओं को लक्षगत करना चाहिये। अहा, निर्विकल्प अनुभव का पूरा कथन करने की वाणी में ताकत नहीं; ज्ञान में इसको जानने की ताकत है, अंतर के वेदन में भी आता है, परंतु वाणी में उसका पूरा कथन नहीं आता; ज्ञानी की वाणी में उसका संकेत आता है। अरे, जो विकल्प को भी गम्य नहीं हो सकता, ऐसा निर्विकल्प अनुभव वाणी के द्वारा कैसे हो जाये? वह तो स्वानुभवगम्य है।

एक सज्जन शक्कर का मीठा स्वाद ले रहा हो, वहाँ कोई दूसरा मनुष्य जिज्ञासापूर्वक उस शक्कर खानेवाले को देखे, या उसके पास शक्कर के मीठे स्वाद का वर्णन सुने, तो इतने से उसके मुँह में शक्कर का स्वाद नहीं आ जाता; वह स्वयं शक्कर की डली लेकर अपने मुँह में रखकर चूसे (आस्वादे), तभी उसकी शक्कर के मीठे स्वाद का अनुभव होता है। वैसे कोई 'सज्जन' अर्थात् संत-धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि निर्विकल्प-स्वानुभव में अतीन्द्रिय आनंद का मीठा स्वाद ले रहा हो, वहाँ दूसरा जीव जिज्ञासापूर्वक उस अनुभवी धर्मात्मा को देखे, या उसके पास प्रेमपूर्वक उस अनुभव का वर्णन सुने, तो उतने से उसको निर्विकल्प अनुभूति का स्वाद नहीं आ जाता; वह जीव स्वयं अपने शुद्धात्मा को लक्ष में लेकर, उसे ही मुख्य करके, जब अंतर्मुख उपयोग के द्वारा स्वानुभव करे, तभी उसको शुद्धात्मा के निर्विकल्प अनुभव के अतीन्द्रिय आनंद का मीठा स्वाद वेदन में आता है।

—ऐसा स्वानुभव होने पर सम्यग्दृष्टि जानता है कि अहो! मेरी वस्तु मुझे प्राप्त हुई। मेरे में ही विद्यमान मेरी वस्तु को मैं भूल गया था, वह धर्मात्मा गुरुओं के प्रसाद से मुझे प्राप्त हुई।

अपनी वस्तु अपने में ही है, वह निजध्यान में प्राप्त होती है, बाहर के किसी रागादिभाव से वह प्राप्त नहीं होती अर्थात् अनुभव में नहीं आती। सविकल्प के द्वारा निर्विकल्प में आया, ऐसा उपचार से कहा जाता है। स्वरूप के अनुभव का उद्यम करने में प्रथम उसकी सविकल्प विचारधारा चलती है, उसमें सूक्ष्म राग व विकल्प भी होते हैं, परंतु उस राग को या विकल्प को साधन बनाकर स्वानुभव में नहीं पहुँचा जाता। राग का व विकल्पों का उल्लंघन करके, सीधा आत्मस्वभाव का अवलंबन लेकर उसे ही साधन बनावें, तभी आत्मा का निर्विकल्प स्वानुभव होता है; और तभी जीव कृतकृत्य होता है। शास्त्रों ने इसका अपार माहात्म्य किया है।

एक क्षणभर के स्वानुभव से ज्ञानी के जो कर्म टूटते हैं, अज्ञानी के लाख उपाय करने पर भी इतने कर्म नहीं टूटते। सम्यक्त्व की व स्वानुभव की ऐसी कोई अचिंत्य महिमा है। यह समझकर रे जीव! उसकी आराधना में तू तत्पर हो।

पूज्य स्वामीजी करुणापूर्वक कहते हैं कि—भाई, अनंत काल में ऐसा दुर्लभ मनुष्यजन्म प्राप्त हुआ, उसमें अपने सत् स्वरूप को लक्ष में ले... वीतरागमार्ग में कहे हुए ज्ञान का स्वरूप जान। अपना वीतरागी ज्ञानस्वभाव ही तुझे शरणभूत है, अन्य कोई नहीं। भगवान, अंतर में एकबार अपने आत्मा की ओर तो देख!

भगवान आत्मा निज शक्तियों से सुशोभित है

* श्री समयसार की 47 शक्तियों पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से *

❊ सर्वज्ञ भगवान कहते हैं कि भाई! तू आत्मा है, तुझमें सर्वज्ञस्वभाव आदि अनंत शक्तियाँ विद्यमान हैं; उन शक्तियों का वर्णन इस समयसार में किया है। अनुभव में कलम डुबो-डुबोकर इस समयसार की रचना हुई है।

❊ अनंत शक्तियाँ आत्मा में एकसाथ हैं; उस शक्तिमान आत्मद्रव्य को पहिचानकर अनुभव में लेने से अनंत शक्तियों का स्वाद एकसाथ आता है; अनंत शक्तियाँ एकसाथ निर्मलरूप से परिणमित होती हैं—उल्लसित होती हैं।

❊ अपनी अनंत शक्तियों को नहीं जाना और अपने को रागादि जितना माना, इसलिये पर्याय में जीव की शक्ति मुँद गई है और वह दु:खी होकर संसार में भटकता है। इसप्रकार निजशक्ति का अज्ञान, वह अधर्म है।

❊ अपने स्वभाव की शक्ति का भान होने पर रागादि में से आत्मबुद्धि उड़ जाये और स्वभाव के अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद अनुभव में आये, वह धर्म है, तथा वह मोक्षमार्ग है।

❊ यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! तेरा स्वरूप ज्ञान है; अकेला ज्ञान नहीं परंतु ज्ञान के साथ अनंतगुणों का परिणमन भी है। तू ही सर्वशक्तिमान परमेश्वर है।

❊ प्रत्येक द्रव्य में अनंत शक्तियाँ हैं; जड़ में भी अनंत शक्तियाँ हैं; परंतु यहाँ ज्ञानस्वरूप आत्मा की शक्तियों का वर्णन है; क्योंकि आत्मा के स्वभाव को पहिचानने का प्रयोजन है।

❊ प्रथम जीवत्वशक्ति कहकर आत्मा का जीवन बतलाते हैं। आत्मा का जीवन किससे टिकता है?—तो कहते हैं कि चैतन्यमय भावप्राणरूप जीवत्वशक्ति से आत्मा सदा जीता है—जीवरूप से टिकता है।

❊ तेरा जीवन इन शरीर-मन-इंद्रियों या आयु द्वारा नहीं है; आयु तो शरीर के संयोग की स्थिति का कारण है, उसके द्वारा कहीं जीव टिकता नहीं है, जीव तो अपने चैतन्य जीवन

द्वारा जीता है। आयु जीव की नहीं है, आयु पूर्ण होने पर जीव मर नहीं जाता, वह तो चैतन्यप्राण द्वारा जीवित ही है।

❋ अरिहंत भगवान और सिद्ध भगवान ऐसा चैतन्य जीवन जीते हैं—वही सच्चा जीवन है।

❋ नेमिनाथ भगवान की भाँति अपना आत्मा भी चैतन्य जीवन जीनेवाला है। अपने जीवन के लिये—अपने अस्तित्व के लिये अन्य किसी की आवश्यकता नहीं होती।

❋ जीव को जीवत्व का कारण अपने चैतन्यमात्र भावप्राण हैं, और उन भावप्राणों को धारण करने का कारण जीवत्वशक्ति है। आत्मा अपनी जीवत्वशक्ति से चैतन्यमात्र भावप्राण को धारण करके सदा जीवित है। आत्मा स्वयं 'जीवंतस्वामी' है।

❋ सीमंधर परमात्मा को विदेहक्षेत्र के 'जीवंतस्वामी' कहा गया है; जीवंत अर्थात् विद्यमान। उसीप्रकार जीवनशक्ति का स्वामी ऐसा जीवंतस्वामी आत्मा अपने चैतन्यप्राण द्वारा सदा विद्यमान है।

❋ जिसप्रकार जल से भरे हुए सरोवर को छोड़कर हिरन मरीचिका के पीछे दौड़-दौड़कर हाँफ जाये, तथापि उसे पानी नहीं मिलता—कहाँ से मिले? वहाँ पानी है ही कहाँ? उसीप्रकार अनंत शक्ति के जल से भरपूर निर्मल चैतन्य-सरोवर—जो स्वयं है, उसे भूलकर जीव मरीचिका जैसे राग में दौड़ता है और दु:खी होता है; सुख की बूँद भी उसे नहीं मिलती... कहाँ से मिले? राग में सुख है ही कहाँ? ....भाई, सुख का सरोवर तो तुझमें छलाछल भरा है, उसमें देख तो अपने आत्म-सरोवर में से तुझे सुख का अमृत मिलेगा या तेरी तृषा शांत हो जायेगी।

❋ आत्मा और रागादि भाव—दोनों के स्वाद में बड़ा अंतर है; परंतु दोनों के स्वाद का पृथक् अनुभव करनेरूप अज्ञानी की भेद-संवेदनशक्ति ढँक गई है और ज्ञानी को शुद्ध-चेतना द्वारा वह भेद-संवेदन शक्ति खिल गई है... राग से भिन्न आत्मा की प्रतीति होने से चैतन्य का भंडार खुल गया है।

❋ आत्मा की शक्ति द्वारा जिसने आत्मा को जाना, उसके जन्म-मरण का अंत आ गया और मोक्ष का निधान उसे मिल गया... अपने सुख-शांति का सागर अपने में ही उछलता दिखायी दिया।

❊ एक-एक शक्ति के भेद द्वारा आत्मा पकड़ में नहीं आता; आत्मस्वभाव के वेदन में सर्व शक्तियों के वेदन का समावेश हो जाता है। यहाँ समझाने के लिये एक-एक शक्ति का भेद करके अलग-अलग वर्णन किया है।

❊ आत्मा का जीवन चैतन्यमय है, उसमें जड़ता किंचित् नहीं है, इसलिये ज्ञानमय परिणमन ही आत्मा का जीवन है। चेतना आत्मा के सर्व भावों में व्यापक है। ऐसी चेतनायुक्त आत्मा का ग्रहण करने पर उसकी सर्व शक्तियाँ एकसाथ स्वच्छरूप से उल्लसित होती हैं। पर्याय में स्वाद आये बिना—अनुभव हुए बिना निर्णय कैसे हो सकता है कि—'द्रव्य-गुण ऐसे हैं ?'—इसलिये द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में निर्मल शक्ति व्याप्त हो गई है और उन तीनों में राग का अभाव है।—ऐसे आत्मा को ज्ञानी जानता है।

❊ अनंत शक्तिवान आत्मा का अनुभव हुआ, वह निर्विकल्प शुद्धप्रमाण है। उस प्रमाण में राग नहीं आता।

❊ परमभावरूप ज्ञायक आत्मा, उसके सन्मुख होकर अनुभव किया, तब 'मेरा आत्मा ऐसा शुद्ध है'—ऐसा निर्णय हुआ। ऐसे अनुभव बिना मात्र धारणा से 'शुद्ध-बुद्ध' कहे उसे वास्तव में शुद्ध आत्मा की खबर ही नहीं है।

❊ निर्विकल्प चैतन्य-रस का अनुभव करने पर सुख का स्वाद आये, तब सुखशक्तिवान आत्मा को माना कहा जाये। (सुख के साथ अनंत गुणों का भी वेदन होता है।) पर्याय में अतीन्द्रिय आनंदसहित पूर्ण सुखस्वभाव की प्रतीति होती है।

❊ पर की ओर के भावों में शांति नहीं है। मानों जमकर शीतल हिमखंड हो गया हो—ऐसी शांति तो आत्मा के वेदन में है।

❊ मैं स्वयं सर्वज्ञ होने योग्य हूँ, मुझमें सर्वज्ञस्वभाव है—इसप्रकार जिसने स्वोन्मुख होकर प्रतीति की, उसके हृदय में सर्वज्ञ विराजमान हुए। सर्वज्ञ की बातें करे और अपने सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीति न करे तो उसने सर्वज्ञ को सचमुच जाना ही नहीं है। सर्वज्ञ को यथार्थतया तब जाना कि जब स्वसन्मुख होकर आत्मा के ऐसे सर्वज्ञस्वभाव का स्वीकार किया।

❊ ऐसे सर्वज्ञस्वभाव का विश्वास करने जाये, वह राग में खड़ा नहीं रहता। राग से भिन्न

होकर ज्ञानस्वभाव में आया, तब अरिहंत के मार्ग में आ गया; वह अल्पकाल में अरिहंत होगा—ऐसा ही अरिहंतों ने ज्ञान में देखा है। उसके अनंत भव नहीं, और भगवान भी ऐसा ही देखते हैं।

❊ धर्मी जीव साधक होकर केवलज्ञान को बुलाता है। जिस स्वभाव की सन्मुखता द्वारा सम्यग्ज्ञानरूपी दूज का उदय हुआ, उसी स्वभाव की सन्मुखता द्वारा केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा होना है। जगत में सर्वज्ञ हैं और मैं भी सर्वज्ञता की ओर ही जा रहा हूँ—ऐसी धर्मी को निःशंकता है।

❊ अहा, लोकालोक को जानने का सामर्थ्य तो मेरी शक्ति में विद्यमान है। ऐसे ज्ञातास्वभाव को श्रद्धा में लिया, वहाँ धर्मी को परज्ञेय के ओर की आकुलता नहीं रहती। सर्वज्ञता तो मेरे निज-गृह में ही भरी है।

❊ आत्मा की प्रतीति में उसके सर्व गुणों की प्रतीति आ जाती है। गुणों की प्रतीति के लिये गुणों के भेद नहीं करना पड़ते। गुणों के भेद करने से तो विकल्प होता है। निर्मल शक्ति में विकल्प नहीं है और विकल्प द्वारा निर्मल शक्ति प्रतीति में नहीं आती।

❊ आत्मा स्वयं अपने को स्व-संवेदनप्रत्यक्ष होता है; उसके स्वसंवेदन में किसी दूसरे का आलंबन नहीं है। जिसे राग में लाभबुद्धि है अर्थात् राग में एकत्वबुद्धि है, उसे आत्मा का स्वसंवेदन नहीं होता। स्वसंवेदन राग से अत्यंत भिन्न है।

❊ स्वसंवेदन में तो अतीन्द्रिय आनंद है और उसे 'आत्मा' कहा है; स्व-संवेदन में स्वभाव की एकता होने से विकल्प के साथ की एकता टूट जाती है।

❊ अपने शुद्ध गुण-पर्यायों से जो लक्षित होता है, उतना ही आत्मा है; यह शुद्ध प्रमाण का विषय है; इसमें रागादि परभाव नहीं आते।

❊ प्रकाशस्वभाव के कारण आत्मा स्वयं प्रकाशमान ऐसे स्पष्ट स्व-संवेदनरूप है। अपनरी चेतना द्वारा स्वयं अपने को अत्यंत स्पष्ट प्रकाशित करता है। आत्मा को स्वयं अपने को जानने में किसी राग का या इंद्रियों का अवलंबन नहीं है। राग के और इंद्रियों के अवलंबन से जो ज्ञात हो, वह आत्मा नहीं... स्वानुभव में स्वयं अपने को प्रत्यक्षरूप करता है, ऐसा प्रकाशस्वभावी आत्मा है।

❊ भाई! इंद्रियाँ जड़ हैं, उनके द्वारा तेरा ज्ञान नहीं होता। इंद्रियों का अवलंबन लेने जायेगा तो अपने आत्मा को नहीं जान सकेगा। मति-श्रुतज्ञान चतुर्थ गुणस्थान में भी इंद्रिय-मन का अवलंबन छोड़कर, आत्मसन्मुख होकर अतीन्द्रिय प्रत्यक्षरूप होकर स्वयं अपना अनुभव करते हैं। मति-श्रुतज्ञान भी निर्विकल्प होकर सीधे आत्मस्वभाव में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसा स्व-संवेदनज्ञान प्रगट हो, तब धर्म हुआ कहा जाता है।

❊ अरे, अपने ज्ञान से तू स्वयं छिपा रहे—यह कैसे हो सकता है? आत्मा जिसमें प्रत्यक्षरूप न हो, वह ज्ञान नहीं है। सम्यग्दर्शन तब होता है, जब ज्ञान अंतर्मुख होकर स्वयं अपने आत्मा को प्रत्यक्ष स्व-संवेदनरूप करता है।

❊ स्व-संवेदनप्रत्यक्षपने में राग का—व्यवहार का आलंबन नहीं है, उसमें परमार्थ स्वभाव का ही आलंबन है।—ऐसा प्रत्यक्षपना, वह स्वसत्तावलंबी है, इसलिये वह निश्चय है; और परोक्षपना रहे, वह परसत्तावलंबी होने से व्यवहार है।

❊ आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष अनुभवगम्य होता है—ऐसी निज-गृह की अभी जिसे खबर न हो, उसे धर्म कहाँ से होगा? और परगृह में भ्रमण कहाँ से रुकेगा? आत्मा की स्व-संवेदन शक्ति को जो पहिचाने, वह अपने स्वानुभव के लिये किसी भी रागादि परभाव का अवलंबन नहीं माँगता; और जो परभाव का अवलंबन मानता है, वह आत्मशक्ति को नहीं जानता।

❊ वही सच्चा विद्वान है जो अपने ज्ञान को अंतरोन्मुख करके पूर्णानंद सर्वज्ञस्वभावी आत्मा को प्रतीतिरूप तथा स्वसंवेदनरूप करता है। आत्मा के स्वसंवेदन से रहित जितना ज्ञातृत्व है, वह सब थोथा है। जगत के जादू में जीव चकित हो जाता है परंतु अपने चैतन्य का महान चमत्कार है, उसकी उसे खबर नहीं है। अहो, चैतन्यचमत्कार जगत में सर्वोत्कृष्ट है... जिसका चिंतन करने से अपूर्व आनंद होता है।

❊ चैतन्य के स्वसंवेदन की अद्भुत महानता है और मिथ्यात्व में अत्यंत हीनता है।—परंतु जगत को उसकी खबर नहीं है।

❊ चैतन्य का स्वसंवेदन करने के लिये वीरता से जो जागृत हुआ, वह ऐसी दीनता नहीं करता कि मुझे कुछ इंद्रियों के आलंबन की आवश्यकता होगी अथवा मुझे शुभ विकल्प का

आधार चाहिये। वह तो चैतन्य की वीरता से कहता है कि—मैं चैतन्य अकेला अपनी स्वसंवेदन शक्ति से अपने आत्मा को प्रत्यक्ष करूँगा, उसमें मुझे अन्य किसी की सहायता नहीं चाहिये। अपने चैतन्य के अतीन्द्रिय भाव से मैं जागृत हुआ, उसमें अन्य का सहारा कैसा ?

❋ जिसप्रकार युद्ध के मौके पर राजपूत का शौर्य उछल पड़ता है, उसीप्रकार चैतन्य की साधना के मौके पर मुमुक्षु आत्मा को शूरवीरता जाग उठती है और उसकी परिणति स्वभावोन्मुख उल्लसित हो जाती है। अपने स्वभाव के उल्लास के निकट अन्य किसी बाह्यभाव के सामने वह नहीं देखता।

❋ शुद्धनय के आश्रित हुई जो शुद्ध पर्याय, उसे भी शुद्धनय के विषय में सम्मिलित कर दिया है और उसी को आत्मा कहा है। इसप्रकार समयसार की 14वीं गाथा में शुद्धात्मा की अनुभूति को 'आत्मा' ही कह दिया है, उस अनुभूति में कोई भेदविकल्प नहीं है, अकेले आनंदस्वरूप आत्मा का सीधा वेदन वर्तता है।

❋ विकल्प और आत्मा के बीच प्रज्ञा का सीधा प्रहार हो—ऐसा भाव जो समझे, वही भगवान की वाणी को समझा है। अहो, भगवान की वाणी आत्मा और विकल्प के बीच प्रहार करके भेदज्ञान कराती है और अज्ञानरूपी ताले तोड़कर चैतन्य के निधान खोल देती है।

❋ विकल्प और आत्मा के बीच प्रहार करके उन्हें पृथक् करता है, वह प्रहार विकल्प द्वारा नहीं हो सकता परंतु ज्ञान द्वारा ही वह प्रहार हो सकता है। उस ज्ञान ने आत्मा को तो अपने ज्ञानस्वरूप में मग्न किया और विकल्प को दूर कर दिया।—इसप्रकार राग से पृथक् होकर वह ज्ञान मोक्ष की ओर परिणमित हुआ—आनंदस्वभाव में एकाग्र हुआ।

❋ अहो, इस तत्त्व को अनुभव में लेकर प्राप्त करें, ऐसे जीव तो लाखों-करोड़ों में कोई विरले ही होते हैं। ऐसे तत्त्व का प्रेम करके उसकी प्राप्ति की अभिलाषा करनेवाले अनेक जीव होते हैं परंतु अनुभव करनेवाले तो विरले ही होते हैं। ऐसी विरलता जानकर अंतर के अपूर्व उद्यमपूर्वक स्वयं उन विरलों में सम्मिलित हो जाना चाहिये।

यदि तू शिवपुरी का पथिक होना चाहता हो —तो क्या करना ? यह आचार्यदेव बताते हैं।

हे पथिक शिवपुरी पंथ के!.... तू प्रथम जानना भाव को;
है मार्ग साध्य प्रयत्न से; नहीं भावविरहित लिंग से॥
(भावप्राभृत, गाथा-6)

'हे शिवपुरी के पथिक!' वीतरागभाव रहित मात्र बाह्य दिगंबर लिंग से—शुद्धभाव रहित लिंग से कुछ मोक्षमार्ग नहीं साधा जाता; जिनवरदेव कथित मोक्षमार्ग तो सम्यक्त्वादि शुद्धभावरूप प्रयत्न से ही साध्य है; इसलिये प्रथम तू भाव को जान।

अहा! देखो तो सही, आचार्यदेव ने भव्य जीव को कैसा मिष्ट संबोधन किया है? 'शिवपुरी पंथ के पथिक!' ऐसा कहकर बुलाया है। अरे भाई! तू तो शिवपुरी के मार्ग पर चलनेवाला है न! तो वह मार्ग शुद्धभाव से ही साधा जाता है; इसलिये तू प्रथम शुद्धभाव को जानकर उसका प्रयत्न कर। शुभराग से या मात्र बाह्य दिगंगर मुनिभेष से मोक्षमार्ग की साधना नहीं होती! तू अनादिकाल से शुद्धभाव के बिना ही संसार में भटका। शुभाशुभभाव तो अनंत काल में अनंत बार किये हैं, द्रव्यलिंग भी अनंत बार ग्रहण किया है—किंतु शिवपुरी का मार्ग अभी तक तेरे हाथ में नहीं आया; इसलिय अब तू समझ कि उससे भिन्न प्रकार का शुद्धभावरूप मोक्षमार्ग है; ऐसा जानकर ऐसे शुद्धभाव का तू उद्यम कर। आत्मा का स्वरूप जानकर स्वसन्मुख परिणति, वह शुद्धभाव है; वही शिवपुरी का उद्यम है। इस मार्ग से जिनेश्वरदेव मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, और उसी मार्ग का जगत के भव्य जीवों को उपदेश दिया है।

अर्हत सौ कर्मोतणो करी नाश ए ज विधि वडे,
उपदेश पण एम ज करी, निर्वृत्त थया; नमुं तेमने।
(प्रवचनसार, गाथा 82)

प्रथम सम्यग्दर्शन, वह शुद्धभाव है; मुनित्व, वह भी शुद्धभाव है; केवलज्ञान, वह पूर्ण शुद्धभाव है—इस शुद्धभावरूप प्रयत्न से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

शुभाशुभरूप कषायभाव उन्हें भी प्रयत्न तो कहते हैं, किंतु मोक्ष का प्रयत्न तो वीतरागतारूप शुद्धभाव है। ऐसे भाव को हे भव्य! तू जान... तो तेरे शिवपुर का पंथ हाथ में आयेगा। शिवनगरी ही तेरा सच्चा शाश्वत निवासस्थान है। आनंदधाम तेरा चैतन्य तत्त्व, उसमें तू जा... वही तेरा मार्ग है। प्रभु, तेरा तत्त्व तेरे अंतर में होगा, या शरीर में और राग में होगा? नग्न शरीर या राग में शोधेगा तो वहाँ तुझे मोक्षमार्ग नहीं मिलेगा। उसमें तो संसार की चार गतियाँ मिलेगी। मोक्ष के पंथ को शोधना हो तो अंतर में शुद्धभाव में प्रयत्न से शोध! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को भगवान ने मोक्षमार्ग कहा है, और वह तो आत्मा का शुद्धभाव है। दिगम्बर शरीर, वह कुछ आत्मभाव नहीं, वह तो अनात्मभाव है। राग, वह भी कुछ शुद्ध आत्मभाव नहीं, निश्चय से वह भी अनात्मभाव है। सम्यक्त्वादि भाव वे शुद्ध आत्मभाव हैं, वही मोक्षमार्ग है। अरे जीव! एकबार तू ऐसे सत्यमार्ग को जान तो सही! तुझे महा आनंदमय शिवपुरी का मार्ग हाथ में आयेगा।

भाई! यदि तुझे मोक्ष की साधना करनी हो तो बाह्य साधन में या शुभराग में मग्न नहीं होना, उसे मोक्ष का साधन नहीं मानना। मोक्ष का साधन तो राग से पार, जड़ शरीर से पार, अंतर के शुद्ध चैतन्यभावरूप है, उसका तू प्रयास करना। हम तो तुझे शिवपुरी का पंथ बताते हैं। इसलिए हे शिवपुरी पंथ के पथिक! प्रयत्नपूर्वक ऐसे मार्ग से अल्पकाल में ही तू आनंदमय शिवपुरी को प्राप्त करेगा। अनंत काल से राग के मार्ग में गमन करने पर भी शिवपुरी की तुझे प्राप्ति नहीं हुई, और तू संसार में ही रहा।

वह मुक्ति का पंथ हमने जानकर स्वयं अनुभव किया हुआ यह शुद्धभाव है। शुद्धोपयोग, वह प्रसिद्ध मोक्षमार्ग है; उसे प्रयत्न से जानकर तू इस शिवपुरी के पंथ में गमन कर।

स्वानुभव, यह मूल चीज़ है। वस्तुस्वरूप का यथार्थ निर्णय करके, मति-श्रुतज्ञान को अंतर्मुख करके स्वद्रव्य में परिणाम को एकाग्र करने पर सम्यग्दर्शन व स्वानुभव होता है। जब ऐसा अनुभव करे, तब ही मोह की गाँठ टूटती है, और तब ही जीव भगवान के मार्ग में आता है।

विविध समाचार

— धार्मिक समाचार —

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) परमोपकारी पूज्य श्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं; सवेरे अष्टपाहुड़ तथा दोपहर को समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन चालू हैं। विशाल और उत्तम व्यवस्था सहित होनेवाला महोत्सव नजदीक आ रहा है, सभी को धर्म-वात्सल्य हर्षोल्लास है, गुजरात में सर्वत्र शांति है, सोनगढ़ का वातावरण अत्यंत उल्लासमय है, उत्सव की तैयारी खूब तेजी से चल रही है; सब कार्यक्रम होंगे। आमंन्त्रण-कुंमकुंम-पत्रिका सर्वत्र भेजी गई है, यदि कहीं पर नहीं मिली हो तो भी सभी साधर्मी बंधुओं से प्रार्थना है कि वे धर्म-लाभ हेतु उत्सव में अवश्य पधारें।

भगवान महावीर की अति भव्य प्रतिमाजी का पंचकल्याणक महोत्सव, परमागम का उद्घाटन तथा दस कुमारिका बहिनों द्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा, भारतीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद आदि धार्मिक आयोजन फागुन सुदी 5 से सुदी 13 तक आठ दिन रखा है; उन दिनों में पूज्य स्वामीजी समयसारजी शास्त्र में से संवर अधिकार तथा पद्मनंदिपंचविंशतिका में से ऋषभजिन स्तोत्र पर हिंदी में प्रवचन करेंगे।

तीन इंद्र और कुबेर होने की बोली फाल्गुन सुदी 4 को होगी। भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य की चरण पादुकाजी एवं पाँचों परमागम श्री समयसारजी, श्री प्रवचनसार, श्री नियमसार, श्री पंचास्तिकाय और श्री अष्टपाहुड़ पाँच वेदियों में विराजमान होंगे। संगमरमर पर खुदे हुए दो आचार्यों तथा मुनिवर के अति भाववाही विशाल चित्र लगेंगे आदि अनेक आयोजन हैं।

निवास्थान, पानी आदि की व्यवस्था उत्तम प्रकार से है; गुजराती एवं हिन्दी भोजनालय (होटल) खुलवाने की सुंदर व्यवस्था की गई है; सभी को पधारने का आमंत्रण है। बिस्तर और लोटा आदि अवश्य लावें।

कार्यक्रम निम्न प्रकार है—

1 फाल्गुन सुदी पंचमी (तारीख 27) शांतिजाप, प्रतिष्ठा मंडप में भगवान को विराजमान करना, जैनझंडा-ध्वजारोहण, मंडल विधान सहित पंचपरमेष्ठी पूजन प्रारंभ

2 फाल्गुन सुदी छठ (तारीख 28) नांदिविधान, इंद्रप्रतिष्ठा, पूजाविधान की पूर्णता, अभिषेक, मृतिकानयनादि।

3 फाल्गुन सुदी सप्तमी (तारीख 1-3-74) यागमंडल पूजा विधान प्रारंभ, जलयात्रा, गर्भकल्याणक की पूर्वक्रिया।

4 फाल्गुन सुदी अष्टमी (तारीख 2-3-74) वीरप्रभु का गर्भकल्याणक, वेदी शुद्धि आदि

5 फाल्गुन सुदी नवमी (तारीख 3) जन्मकल्याणक, अभिषेक, पालना-झूलन, राजतिलक, राजसभा

6 फाल्गुन सुदी 10 (तारीख 4) दीक्षाकल्याणकादि

7 फाल्गुन सुदी 12 (तारीख 5) आहारदान, अंकन्यास, केवलज्ञानकल्याणकादि।

8 फाल्गुन सुदी 13 (तारीख 6) बुधवार-निर्वाणकल्याणक, परमागममंदिर का उद्घाटन, उसमें भगवान महावीर की मंगज-प्रतिष्ठा (11 बजे) श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव की चरणपादुका का स्थापन, कलश-ध्वजारोहण, शांतियज्ञ, रथयात्रा।

❀ विधिनायक श्री महावीर भगवान ❀ प्रतिष्ठाचार्य पंडित श्री मुन्नालालजी समगोरया (सागर) ❀ श्री परमागम मंदिरजी का उद्घाटन जैनसमाज के नेता श्री साहू शांतिप्रसादजी जैन द्वारा ❀ विद्वत् परिषद का सम्मेलन पंडित श्री फूलचंदजी सिद्धांताचार्य की अध्यक्षता में ❀ दस कुमारिका बहिनें आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा पूज्य स्वामीजी के समक्ष अंगीकार करेंगी। भजन मंडली अजमेर तथा घाटकोपर (बम्बई) की आवेगी।

केंद्रीय प्रबंध-समिति की बैठक सोनगढ़ में—

! आल इंडिया दिगम्बर जैन-भगवान महावीर 2500 वाँ निर्वाण-महोत्सव सोसायटी की प्रबंध-समिति की बैठक तारीख 5 मार्च 1974 के दिन सोनगढ़ में समिति के अध्यक्ष श्री

साहूजी शांतिप्रसादजी जैन की अध्यक्षता में होगी, उसी के साथ गुजरात-सौराष्ट्र की प्रादेशिक समिति की मीटिंग भी होगी।

उत्सव पूर्ण होने के बाद जाने में सुविधा हो, इस हेतु सोनगढ़ से अहमदाबाद, राजकोट, जूनागढ़, पालीताणा आदि के लिये स्पेशल बसों की व्यवस्था भी हो जावेगी।

टेलीफोन नं. सोनगढ़
नं. 65 (६५)

तार:—
PARMAGAM (SONGAD)
परमागम सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

भोगाँव, कुरावली, इटावा (उ.प्र.)—ब्रह्मचारी श्री हेमराजजी अच्छी तरह धर्मप्रभावना कर रहे हैं। दो मास तक तो भोगाँव, कुरावली में जैन शिक्षण कक्षा, प्रवचन, शंका-समाधानादि कार्यक्रम चलाया। समाज ने अच्छी संख्या में एकत्र होकर उत्साहपूर्वक लाभ लिया। पश्चात् एक महीना इटावा में रहे। आपके प्रति इटावा के समाज को भारी प्रेम है। धार्मिक कार्यक्रम देकर आप भिंड (म.प्र.) गये, वहाँ से सोनगढ़ उत्सव में भाग लेने आयेंगे।

पुसद (यवतमाल)—तारीख 9-1-74 ब्रह्मचारी पंडित दीपचंदजी गोरे द्वारा धर्मप्रचार के समाचार हैं कि—आकोला, आनसिंग, पुसद वहाँ 13 दिन के धार्मिक कार्यक्रम दिये। पश्चात् हिंगोली, वर्धा, नागपुर, छिंदवाडा, बारामती, बालचंदनगर, अकलूज, नातेपुते जाने का कार्यक्रम है। वहाँ से पंढरपुर, बाहुबली (कुम्भोज) तथा कोल्हापुर होकर फाल्गुन सुदी 5 से 13 तक होनेवाले पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में लाभ लेने सोनगढ़ आयेंगे। आप श्री नवनीतभाई सी. जवेरी की ओर से टेपरिकार्ड द्वारा श्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन सुनाने, तीर्थयात्रा की फिल्में दिखाने तथा शंका-समाधान एवं शास्त्रसभा के कार्यक्रम देते हैं।

नागपुर (म.प्र.)—तारीख 24-1-74 श्री पंडित धन्नालालजी तथा श्री पंडित ज्ञानचंदजी (विदिशा) भी विशेष आमंत्रण पर यहाँ पधारे थे। चार दिन तक श्री ज्ञानचंदजी का लाभ मिला। पंडित श्री धन्नालालजी द्वारा आठ दिन तक प्रवचन, जैनशिक्षण कक्षाएँ, अष्टाह्निका मंडल विधान-पूजा अर्थ सहित आदि का समाज ने अच्छा लाभ लिया। आगामी पर्यूषण में श्री पंडित ज्ञानचंदजी को अवश्य भेजा जाये—ऐसी नागपुर जैनसमाज द्वारा जोरदार माँग है। नागपुर के समाज ने अच्छी व्यवस्था की और लाभ लिया।

ब्रह्मचारी पंडित रमेशचंदजी जो टेपरिकार्ड द्वारा पूज्य स्वामीजी के प्रवचन तथा शंका-समाधान आदि का कार्यक्रम जगह-जगह घूमकर देते हैं, वे सोनगढ़ आ गये हैं।

—: विशेष समाचार :—

माघ कृष्णा 13, दिनांक 21-1-74 के दिन प्रात:काल पूजय स्वामीजी का प्रवचन नव-निर्मित श्री महावीर-कुन्दकुन्द-परमागममंदिर में हुआ था। प्रवचन समाप्त होने पर श्री पंचकल्याणक-महोत्सव की आमंत्रण-पत्रिका लिखने की विधि बड़े ही हर्षोल्लास के वातावरण में हुई। प्रथम श्री पंडित हिम्मतभाई जेठालाल शाह ने आमंत्रण-पत्रिका पढ़कर सुनायी, पश्चात् पूज्य स्वामीजी ने अपने शुभहस्त से पत्रिका पर ॐ लिखा और श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री रामजीभाई माणेकचंद दोशी ने अपने हाथ से आमंत्रण-पत्रिका पूज्य स्वामीजी को दी। तत्पश्चात् श्री नवनीतलाल चुन्नीलाल जवेरी, अध्यक्ष श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट ने पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन तथा पूज्यश्री शांताबहिन को अपने हाथ से आमंत्रण-पत्रिका दी थी। तत्पश्चात् विशेष आगुंतकों को आमंत्रण पत्रिकाएँ दी गई थीं। इसप्रकार आमंत्रण-पत्रिका भेजने का शुभ मुहूर्त सानंद संपन्न हुआ था।

तत्पश्चात् पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हेतु पूर्वनिश्चित कार्यक्रमानुसार 13 इंद्रों की बोलियाँ पूज्य स्वामीजी की उपस्थिति में हुईं। सर्वप्रथम सौधर्म इंद्र की बोली बड़े ही उत्साहपूर्वक हुई, जो जयपुर निवासी श्री पूरणचंदजी गोदिका ने तथा ईशान इंद की बोली सूरत निवासी श्री सेठ मनहरलाल धीरजलाल ने ली थी। और भी अनेक मुमुक्षु-भाइयों की इस अवसर पर सोनगढ़ आने की इच्छा थी, परंतु सौराष्ट्र तथा गुजरात में वातावरण ठीक न होने से वे समय पर नहीं पहुँच सके। जिससे 3 इंद्रों की तथा कुबेर की बोली अनेक भाइयों के कहने से बाकी रखी है, जो प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर बोली जायेंगी। इस अवसर पर बाहर से करीब चार-पाँच सौ धर्मप्रेमी सज्जन सोनगढ़ पधारे थे।

मंत्री : **प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

❀

A
T
A
M
D
H
A
R
M
A

❀

R.
No.
G.
108

❀

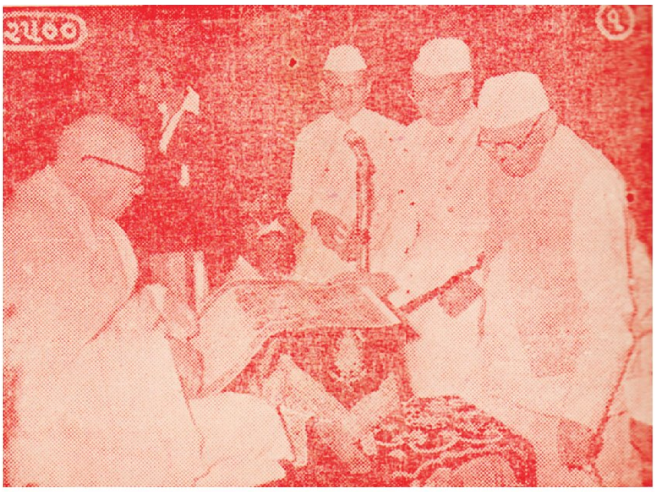

सोनगढ़ में माघ कृष्णा 13 दिनांक 21-1-74 को पूज्य श्री कानजीस्वामी की मंगल-उपस्थिति में आमंत्रण-पत्रिका लिखने का शुभमुहूर्त रखा गया था। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री रामजीभाई माणेकचंद दोशी पूज्य स्वामीजी को आमंत्रण-पत्रिका दे रहे हैं। पास में श्री नवनीतलाल चुन्नीलाल जवेरी (ट्रस्ट के वर्तमान अध्यक्ष) एवं श्री पंडित बाबूभाई महेता (जो प्रतिष्ठा-महोत्सव को सफल बनाने के लिये अनवरत प्रयास कर रहे हैं) खड़े हैं।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)